REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 1 | OCTOBER – 2017

स्वतन्त्रता का मुक्ति संग्राम और समाजवाद

डॉ अखिलेश त्रिपाठी
राजनीति विज्ञान विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद.

प्रस्तावना :

स्वतंत्राता से पूर्व राष्ट्र दो भागों में विभक्त था– एक ब्रिटिश भारत तथा दूसरा देशी रियासतें। स्वतंत्राता के पश्चात् राष्ट्र का एकीकरण आवश्यक था। एकीकरण के समय भारत में विभिन्न तरह की इकाइयाँ अस्तित्व में थी। किसी भी नवीन व्यवस्था के लिए राष्ट्र का एकीकरण परम आवश्यक होता है। इन सभी इकाइयों में साम्यता पैदा हो गयी। कांग्रेस ही एक ऐसा मंच या दल था जो राष्ट्रीय एकीकरण के निमित्त सरकार का गठन करने में सक्षम था। भारत के सभी राज्यों को जिसमें दोनों प्रकार की इकाइयाँ थी, समानता का अधिकार प्रदान किया गया।

भारतीय राज्यों को जब संघ में सम्मिलित किया गया उस समय सभी इकाइयों में कुलीन एवं राजतंत्राात्मक शासन व्यवस्था प्रचलित थी। भारत में एकीकरण करने के बाद ही सरकार में स्थायित्व की भावना का विकास हो सकता था इसके साथ भारत की अर्थव्यवस्था की संरचना औपनिवेशिक थी तथा अधिकांश मामलों में भारत अन्य राज्यों पर आश्रित था। स्वातंत्रयोत्तर भारत के प्रारम्भिक दिनों में देश की आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई थी। जन सामान्य अभी भी आधारभूत समस्याओं में उलझा हुआ था। साधारण जनता के जीवन स्तर में प्रगति नही हुई थी।[1] इस निम्न स्तर के जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार न होने से मजदूर वर्ग में भ्रम की भावना व्याप्त हो गयी थी ऐसे परिवेश में मजदूर आन्दोलन का सूत्रापात होना स्वाभाविक था। जन सामान्य की उपभोग की वस्तु में अभिवृद्धि नहीं हो रही थी परिणामस्वरूप साधारण जनता कष्ट में थी। इसकी तार्किक परिणति यह हुई कि जन सामान्य में सत्तारूढ़ कांग्रेस के प्रति आशंका एवं अविश्वास की भावना पैदा हो रही थी। कांग्रेस की नीतियों एवं कार्यक्रम में जनसाधारण उपेक्षित सा होने लगा था, परिणाम स्वरूप कांग्रेस की नीतियों के प्रति भी जनता में अविश्वास होने लगा था। अनियंत्राण लगातार बढ़ता जा रहा था, इसके लिए शक्ति की आवश्यकता थी, जिसे तत्कालीन सरकार अंगीकार नहीं कर रही थी। अथवा तत्कालीन सरकार अपेक्षित शक्ति का प्रयोग नहीं कर रही थी मुद्रा प्रसार में लगातार वृद्धि होती जा रही थी जो जनता की आशंका का मूल कारण थी। सन् 1947 ई0 में तथा इसके बाद सरकार ने मुद्रा प्रसार पर नियंत्राण करने के लिए अनेक उपायों एवं साधनों की घोषणा की। इन्हीं भावी समस्याओं को दृष्टिपथ में रखकर कांग्रेस के कराची अधिवेशन (1931) में आर्थिक एवं मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित प्रस्ताव का पारेषण हुआ था। कराची अधिवेशन में कांग्रेस समाजवादी दल ने आधारभूत उद्योगों, खाद्यान्न, रेलवे तथा जनसामान्य से सम्बन्धित उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव रखा था।[2]समाजवादी दल द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के अस्वीकृति के परिणाम स्वरूप समाजवादी तथा विशेष रूप से साम्यवादी विचारक एवं बुद्धिजीवी इससे अत्यधिक खिन्न हुए। इसी समय साम्यवादियों ने सम्पत्ति के अधिग्रहण तथा वर्ग संघर्ष का सुझाव प्रस्तुत किया। परन्तु कांग्रेस ने इस सुझाव को भी अस्वीकृत कर दिया। परिणाम स्वरूप समाजवादी दल के सदस्यों के असंतोष में गुणात्मक वृद्धि हुई। इस घटना के अनुक्रम में कांग्रेस पार्टी ने एक प्रस्ताव के माध्यम से स्पष्ट किया कि कांग्रेस के मंच पर इस प्रकार के वैचारिक प्रस्तावों की प्रस्तुति न की की जाय। अक्टूबर सन् 1934 ई0 में बम्बई कान्फ्रेन्स में समाजवादियों ने अपनी नीतियों की उद्घोषणा की, जिससे उत्पादन विनिमय एवं वितरण के साधनों के समाजीकरण का प्रबल अनुसमर्थन किया गया।[17] समाजवादी दल के सुझावों की अवहेलना करने के परिणामस्वरूप कांग्रेस सरकार को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था।

खाद्यान्न समस्या तत्कालीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण समस्या थी। ब्रिटिश सरकार ने भी खाद्यान्न समस्या और उससे सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाये थे। राष्ट्रीय सरकार ने भी स्वतंत्राता के पश्चात् चार–पाँच वर्ष के अन्तराल में भारत की खाद्यान्न समस्या के समाधान की घोषणा की थी परन्तु कार्यक्रम में उसकी परिणत नहीं हो पायी भी फिर भी खाद्यान्न के सम्बन्ध में भविष्य उज्जवल प्रतीत नहीं होता था। दुर्भाग्यवश भारत इसी समय कई इकाइयों में विभक्त हो गया था। देश की अर्थव्यवस्था घाटे एवं कच्चे माल की समस्या से जूझ रही थी। पंजाब एवं बंगाल के विभाजन के परिणाम स्वरूप देश को कच्चे माल की समस्या से संघर्ष करना पड़ा। खाद्यान्न के सम्बन्ध में भारत का उत्पादन संतुलित एवं संतोषप्रद नहीं था। सन् 1948 ई0 का वर्ष खाद्यान्न उत्पादन के लिए कुछ अच्छा रहा लेकिन इस वर्ष का उत्पादन भी आवश्यकता के अनुरूप नहीं था। यह प्रगति एकदम मंथर थी। जिस अनुपात में देश की जनसंख्या बढ़ रही थी उस अनुपात में उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो रही थी। भारत के सम्मुख अकाल, बाढ़ एवं सूखे की महत्वपूर्ण विकट समस्या थी। इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने अनेक प्रशासनिक कदम उठाये, योजनाओं का परिनिर्माण किया। संयोगवश इन योजनाओं को प्रकृति का भी सम्बल प्राप्त हुआ परिणामस्वरूप शासन पर जन दबाव में कमी आयी। सरकार द्वारा खाद्य समस्या के ऊपर पूर्ण रूपेण नियंत्राण प्राप्त नहीं किया जा सका। सरकार ने खाद्य समस्या के समाधान को अपना महत्वपूर्ण प्रशासनिक लक्ष्य बनाया। इस निमित्त कृषि विकास को आवश्यक माना गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना इसका स्पष्ट प्रमाण है।[३] कृषि उन्नति के लिए वैज्ञानिक तकनीक को अपनाया गया। सरकार ने सन् 1950.51 ई0 में खाद्य पदार्थों की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किया। इसके लिए भारत सरकार ने विदेशों से 190 करोड़ डालर के ऋण लिये तथा डालर में ऋण के लिए भारत ने विश्व के अन्य देशों से समझौता किया।

भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्मीमांसा की आवश्यकता की अनुभूति की जाने लगी। अग्रेरियन योजना को सफल बनाने के लिए तकनीकी तथा दूसरे साधन जुटाने का सुझाव प्रस्तुत किया गया। सन् 1950 ई0 के वर्ष में भारत औद्योगिक दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ राष्ट्र था। औद्योगीकरण की सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह थी कि जो मुख्य उद्योग नियोजित किये गये थे उनमें अधिकांशतः विदेशी पूंजी लगायी गयी थी जिसकी वजह से जो लाभ होता था वह विदेशी पूंजीपतियों अथवा उनकी सरकार के पास चला जाता था। राष्ट्रीय सरकार ने विदेशी पूंजी के विनियोग का प्रयास किया इसके लिए एजेन्सियाँ खोली गयीं तथा उनके निरीक्षण का प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ में लिया। खनिज पदार्थों के विकास, बैंकिंग व्यवस्था तथा फाइनेन्स एवं विदेशी व्यापार, स्वतंत्राता के बाद भी विदेशी एजेन्सियाँ तथा यहाँ के पूंजीपति वर्ग के हाथों में था। इस समस्या के समाधान के लिए स्वतंत्रा ''विदेशी व्यापार नीति की आवश्यकता थी। सरकार ने बिना किसी शंका के विदेशी उद्योगों को अपने अधीन लेना प्रारम्भ कर दिया था। भारतीय औद्योगीकरण के परिपेक्ष्य में राष्ट्रीय उद्योगपतियों ने ''टाटा बिरला योजना'' आरम्भ की जिसकी सफलता के लिए सरकार ने आश्वासन दिया।

सरकार ने सन् 1947 ई0 तक की कमियों को स्वीकार किया तथा उन्हें दूर करने की योजनाएँ बनायी गयीं परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था अब भी घाटे की अर्थव्यवस्था से उबर नहीं पायी थी। सरकार द्वारा घाटे का बजट पेश किया गया। मूल्य नियन्त्राण पर गठित सलाहकार समितियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में अपने–अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये। इन समितियों ने एक स्वर में भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वतंत्रा एवं स्वावलम्बी बनाने की प्रस्तावना की। इन प्रतिवेदनों का केन्द्रीय विचार था कि आर्थिक अव्यवस्था का मूल कारण प्रशासनिक शिथिलता है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था या संरचना की सफलता की अनिवार्य शर्त है प्रशासनिक प्रतिबद्धता एवं कार्य निष्ठा। इसके लिए एक बाध्यकारी कार्य शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। आर्थिक विकास के लिए प्राथमिक कार्य सरकार के समक्ष अर्थव्यवस्था का प्रबन्ध करना था। इसके लिए सरकार ने विदेशों से ऋण तथा अपने नागरिकों से दीर्घकालिक ऋण लिया परिणाम स्वरूप गिरती हुई अर्थव्यवस्था को सम्बल प्राप्त हुआ। पश्चिमी राष्ट्रों की अपेक्षा पूरब के सभी राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था की भाँति ही थी। पूर्व के समस्त देशों की राजनीतिक दशा भारत के ही समान थी।

कांग्रेस की प्रतिस्थापना देश को स्वतंत्रा कराने के लिए की गयी थी। स्वतंत्राता की प्राप्ति के लिए एक ऐसे राष्ट्रीय मंच की आवश्यकता थी जो स्वतंत्राता प्राप्त करने वाले विविध वर्गों एवं विचारधाराओं को समायोजित कर सके। राष्ट्र की स्वतंत्राता के बिना कोई भी अर्थनीति सफल नहीं हो सकती थी। सन् 1927 ई0 तक साम्यवादी कांग्रेस में ही बने रहे तथा कार्य करते रहे तथा कहीं–कहीं (प्रान्तों में) कांग्रेस कार्य कारिणी के भी सदस्य बने रहे। भारत में साम्यवादियों के विचार कांग्रेस के लिए एक भाव वाला नहीं रहा है, समय–समय पर इसमें कई परिवर्तन आते रहे। वे कभी कांग्रेस में बने रहने का पक्षपोषण किये तो कभी इसका विरोध। साम्यवादी प्रारम्भ से ही कांग्रेस को भारत में बुर्जुआ हितैषी मानते थे और इस मत पर वे सदैव स्थिर बने रहे। साम्यवादियों की धारणा थी कि कांग्रेस वैचारिक दृष्टि से पूंजीवादी रही है तथा इसकी नीतियाँ एवं कार्यक्रम पूंजीपति वर्ग का हित पोषक रहा है प्रत्युत् कांग्रेस अध्यक्ष यू0 एन0 ढेबर ने कहा था, ''राजनीतिक स्वतंत्राता आर्थिक स्वतंत्राता के बिना बेमानी है। अतः कांग्रेस ने देश में सामाजिक, आर्थिक और वर्ग निरपेक्ष राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से कार्यक्रम बनाये।''[४]

सन् 1928 ई0 के कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि साम्यवादी औपनिवेशिक देशों में किसी भी सुधारवादी दल का अनुसमर्थन नहीं करेंगे। इस विनिश्चय के परिणाम स्वरूप भारत के साम्यवादी कांग्रेस से पृथक हो गये तथा सन् 1930.1932 ई0 के सत्याग्रह में भाग लेना तो दूर रहा प्रत्युत् उसका विरोध करते रहे। सन् 1928 के बाद भारत में साम्यवादी दल अत्यन्त कमजोर होते गये। अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण आन्दोलन के परिवेश में साम्यवादी दल अलग–थलग पड़ गये। परिणाम स्वरूप मजदूर संगठन भी दो वर्गों में विभक्त हो गये। साम्यवादियों ने अपनी लाल यूनियन की पृथक संरचना की। सन् 1938 ई0 में साम्यवादियों का लाहौर में पृथक सम्मेलन हुआ। साम्यवादी अपने वास्तविक स्वरूप में भारत की राजनीति में

भारतीय जनता एवं औपनिवेशिक प्रशासन के सम्मुख आये। कांग्रेस समाजवादी दल को साम्यवादी प्रभावित करने में विफल रहे। 1939 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी के कार्य कारिणी के अधिसंख्य सदस्यों का मत था कि साम्यवादियों के दल विरोधी कार्यों के लिए साम्यवादियों को दल से बहिष्कृत कर देना चाहिए। इस मत के प्रबल पक्ष पोषक डॉ0 राम मनोहर लोहिया थे। प्रत्युत् तत्कालीन समय में कांग्रेस समाजवादी दल के महासचिव जय प्रकाश नारायण थे और उनका साम्वादियों के प्रति आकर्षण पूर्ववत था। इस प्रश्न को लेकर आन्तरिक संघर्ष बढ़ता गया तथा 1940 में रामगढ़ कांग्रेस में अन्तिम रूप से पार्टी ने यह निर्णय किया कि कम्युनिस्टों को तत्काल पार्टी से निष्कासित कर दिया जाय।[५] 1934 में कांग्रेस समाजवादी दल ने अपनी नीति एवं सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए एक प्रारूप बनाया तथा इसी आधार पर दल को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। दल ने श्रमिक किसान और शोषित मध्यम श्रेणी का एक साम्राज्य विरोधी संयुक्त मोर्चा बनाने का विनिश्चय किया। इसके लिए उन्होंने एक स्वतंत्रा संस्थान का निर्माण आवश्यक समझा। इस सम्बन्ध में डॉ. लोहिया ने अपनी थीसिस ;1934द्ध लिखा कि ''आज कम्युनिस्ट पार्टी के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण कार्य एक ऐसी संस्था का निर्माण करना आवश्यक है, जो साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए समस्त शोषित वर्ग के संयुक्त मोर्चे की अभिव्यक्ति है।''[६] सन् 1934 ई0 में कांग्रेस के युवा नेता सुभाष चन्द्र बोस की **रोम्या रोलॉ** से भेंट हुई। उन्होंने गत् 14 वर्ष के कांग्रेस के कार्यों की इन शब्दों में व्याख्या की थी, ''इन वर्षों में कांग्रेस ने दो सिद्धान्तों पर कार्य किया एक तो सत्याग्रह या अहिंसात्मक असहयोग पर और दूसरे देश के कुछ कार्यों को पूंजीपति, मजदूरों, जमींदारों और किसानों को मिलाकर कार्य करता रहा है।''[७]

सन् 1934 ई0 में आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व में पटना में कांग्रेस समाजवादी दल का गठन हुआ। तत्कालीन समय में इसे सुधारवादी वाम दल का नाम दिया गया। परन्तु इसके पूर्व ही कांग्रेस के विद्वान कार्यकर्ताओं के जेल में चिन्तन मनन द्वारा भारतीय राजनीतिक आर्थिक संरचना की उर्वर भूमि पर समाजवाद का अरोपण हो चुका था।[८] समाजवादी आन्दोलन के इस बीज को तरु के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित करने वालों में जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, एस0 एम0 जोशी, अशोक मेहता, एम0 आर0 मसानी, एन0 जी0 गोरे तथा एम0 एल0 दन्तवाल के नाम अग्रणीय थे। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि 1932 में नासिक कारागार में कांग्रेस समाजवादी दल की नींव पड़ चुकी थी।[९] भारतीय समाजवाद के शिल्पियों के अनुसार कांग्रेस में शनैः शनैः पूंजीवादी विचारधारा का प्राधान्य होता जा रहा था, गांधीवाद और कांग्रेस समाजवाद एक ही विचारधारा के दो रूप थे। कांग्रेस समाजवादी दल के अनुसार उनका ध्येय जनमानस में व्याप्त विद्रोही भाव को जाग्रत करना नहीं है प्रत्युत जन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना है। स्वतंत्राता के पूर्व समाजवादी कांग्रेस के साथ संयुक्त रूप से राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में अपना महत्तम योगदान देते रहे। स्वतंत्राता प्राप्ति के पश्चात् प्रतिवाद एवं वैचारिक भिन्नता के कारण सन् 1948 ई0 में समाजवादी दल कांग्रेस से पृथक हो गया।

सन् 1934 ई0 में गठित समाजवादी दल का ध्येय स्वतंत्राता के पश्चात् भारत में समाजवाद की प्रतिस्थापना करना था। इसी वर्ष फरवरी मास में कांग्रेस समाजवादी दल का पटना में प्रथम अधिवेशन आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुआ। समाजवादियों के दल से पृथक हो जाने के बाद कांग्रेस के नेताओं ने दल की समस्याओं की पुनः मीमांसा की, क्योंकि वामपंथी विचारधारा के अनुकरण कर्ताओं के दल छोड़ देने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। कांग्रेस द्वारा जो आर्थिक नीति की घोषणा की गयी उसकी वामपंथी तथा दूसरे श्रमिक संगठनों ने घोर आलोचना की थी तथा उसे पूंजीपति वर्ग की पोषक नीति की संज्ञा दी गयी थी।[१०]

संदर्भ ग्रन्थ

१ करेन्ट इकोनामिक प्राब्लम : आ0 वी0 राव, किताब महल इलाहाबाद, 1949।

२ सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया : शंकर घोष एलाइड पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, प्रथम संस्करण, 1971, पृष्ठ संख्या 261।

३ ग्रोथ इन सोशलिज्म इन इण्डिया : कु0 लक्ष्मी गुहा, ज्ञानन्दा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ संख्या 279।

४ कान्स्टीट्यूशनल सिस्टम आफ द इण्डियन रिपब्लिक : के0 आर0 बाम्बवाल, पृष्ठ संख्या 410।

५ डॉ0 लोहिया : ओंकार शरद, रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ संख्या 86।

६ राष्ट्रीयता और समाजवाद : आचार्य नरेन्द्र देव, ज्ञान मन्दिर लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2006, पृष्ठ संख्या 246।

७ थ्रो कांग्रेस आइज : सुभाष चन्द्र बोस, 1972ए पृष्ठ संख्या 143.144।

८ समाजवाद की रूप रेखा : अमर नाथ अग्रवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, तृतीय संस्करण, 1947, पृष्ठ संख्या 316।

९ सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया : शंकर घोष, पृष्ठ संख्या 261।

१० हिस्ट्री आफ द कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी : पी0 एल0 लखनपाल, 1946 लाहौर, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1951, पृष्ठ संख्या 30।